इक्कीसवीं सदी : हिन्दी काव्य संभावनाएँ
(संक्षेप)

राजन यादव
हिन्दी विभाग, इंदिरा कला संगीत वि.वि. खैरागढ़ (छग) पिन - 491881

सारांशः

युग के प्रभाव के अनुरूप काव्य के वर्ण्य विषय और दृष्टि परिवर्तित होते रहते हैं। आज की कविता बौद्धिक युग की कविता है। आज के नव–साम्राज्यवाद का खतरा एक साथ राष्ट्रीय सम्प्रभुता, जनतंत्र और मानवीय संवेदनशीलता पर गहरे रूप में एक साथ है। इस गहन संकट को पकड़ने वाली, उसकी अभिव्यक्ति से मनुष्य को उद्वेलित कर देने वाली कविता ही आज हिन्दी कविता को नये शिखर की ओर ले जा सकती है। इक्कीसवीं सदी में भाषा–संकट भी है। आधुनिकता की अंधी दौड़ में सदियों से स्थापित हमारे नैतिक मूल्य और आदर्शों को हम पीछे छोड़ते जा रहे हैं, फलस्वरूप समाज में तमाम तरह की विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। आज स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, विकलांग विमर्श, प्रगतिशील, परम्परावादी, उत्तर आधुनिक आदि अनेक धाराओं व वाद विशेष को केन्द्र में रखकर काव्य लिखे जा रहे हैं। अतिबौद्धिकता और अधुनातन की वजह से कविता कामिनी के लालित्य में कमी आई है। किन्तु यह भी सत्य है कि इक्कीसवीं सदी कविता के लिए नहीं है, कहानी, उपन्यास, निबंध संस्मरण आदि गद्य में ज्यादा अन्तर भी नहीं रहा। इन सबके बावजूद हम कह सकते हैं कि काव्य में लोकमंगल की भावना आज की कविता में भी सर्वोपरि है।

बीज शब्दः मण्डीवाद, हिंगलिश, अतिबौद्धिकता, भाण्ड, मारक आवृतित्त, सैनिकशाही

साहित्यकार अपने युग की उपज होता है। समाज और देश की परिस्थितियों का उसके संवेदनशील हृदय पर प्रभाव पड़ता है। वह युग की अच्छाइयों के साथ अपने को बाँध लेता है और बुराइयों के प्रति विद्रोह करता है। साहित्यकार जनमानस की भावना का साहित्यिक प्रतिनिधि होता है। वह अपने काल की विषमताओं और जन–मानस का प्रतिनिधित्व करते हुए अपने विराट उत्साह के परिवेश में अपने उच्चतम दायित्व को सम्पन्न करता है। साहित्य की अखण्ड परम्परा के साथ प्राचीन और नवीन का सामंजस्य होता रहा है, पर कालगत विभिन्नता भी अपनी अमिट प्रभाव छोड़ती रही है।'' प्रत्येक युग का रचना संसार अपने लिए कुछ निश्चित काव्यादर्श अवश्य प्रतिष्ठित करता है। कभी ये आदर्श परम्परा से जुड़े होते हैं और कभी युग की आकांक्षा की पूर्ति के क्रम में ये परम्परा से हट जाते हैं। साहित्य के विकास क्रम में न तो परम्परा का त्याग संभव है और न पूर्णतः नवीन काव्यादर्श की प्रतिष्ठा ही की जा सकती है। परिवर्तन का

Corresponding Author: Email: yadavrajan1968@gmail.com
Mobile No. 09977567123

हर युग अतीत के वैभव से कहीं न कहीं जुड़ा रहता है, साथ ही वर्तमान के महत्व को स्वीकार करते हुए वह नवोन्मेष भी चाहता है।"[1]

साहित्य की अभी तक जितनी भी परिभाषाएँ दी गई हों, उसके मानदंड और कसौटियाँ निर्धारित करने के लिए बहस और विमर्शों के दौर चलते रहे हों, किन्तु यह तो निर्विवाद है कि सम्पूर्ण साहित्य अंततः मानव मूल्यों को बचाए रखने का ही महत प्रयास है। प्रथम कवि के प्रथम छन्द से लेकर आज तक की लिखी जा रही कविता में उदात्त मानवीय मूल्यों और युग विशेष का स्वर झंकृत है। युग के प्रभाव के अनुरूप काव्य के वर्ण्य विषय और दृष्टि परिवर्तित होते रहते हैं। कविता की महत्ता जग जाहिर है। इसकी चन्द पंक्तियाँ दृष्टिहीन राजा को लक्ष्य भेदन की ओर उन्मुख कर सकती हैं। स्वाभिमान और दासता के भंवरजाल में फँसे राणाओं के लिए दो पंक्तियाँ नौका बन जाती हैं, कविता केवल हँसाती, रुलाती नहीं बल्कि विलास में डूबे नरेशों को दायित्व बोध भी कराती है। कविता की इन्हीं विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए महाकवि बलदेवप्रसाद मिश्र ने लिखा है–

कविता सविता की ज्योति श्शांक सुधा है
कविता मंत्रों से वेद प्रबुद्ध हुआ है
कवि के दर्शन से धन्य बनूँगा भूपर
उनकी करुणा बह चले देश के ऊपर।।[2]

आज की कविता बौद्धिक युग की कविता है, मोबाइल कल्चर, कम्प्यूटर युग और द्रुतविकास युग की कविता है। हिंसा, व्यभिचार, आतंकवाद, अलगाववाद, नक्सलवाद, भ्रष्ट प्रजातंत्र और बर्बर सैनिकशाही युग की कविता है। इक्कीसवीं सदी की कविता अतिविकास के साथ महाविनाश युग की कविता है। उत्तर आधुनिक समय के भूमंडलीकरण और नव उपनिवेशवाद का दौर अत्यंत जटिल और बहुआयामी यथार्थ के संक्रमण से गुजर रहा है। एक ऐसी उपभोक्तावादी संस्कृति का उदय हुआ है, जिसने मानवीय अर्थव्यवस्था के हर पहलू को निगल लिया है। "राजनैतिक, सामाजिक और वैयक्तिक स्तर पर मूल्य व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है। अंततः लेखक हमारे बीच में जीने वाला एक सामान्य प्राणी है, भले ही अधिक संवेदनशील और जागरूक परंतु इस नियति से जूझने वाला। जब सृजन की सारी उर्वरताएँ, संवेदनाएँ अनुभव और विचार परंपराओं के स्रोत निरंतर बंजर हो रहे हैं, तो उसका दायित्व और कठिन हो जाता है। वह अपने लिए महान व उदात्त मूल्यों के सूत्रों की खोज निकालने के लिए निरंतर संघर्षरत है।"[3] अधिकांश युवा अपने आस–पास की दुनिया, दुनिया में चल रहे पूँजी और सत्ता के खेल और आम आदमी की समस्याओं और संघर्षों के प्रति काफी हद तक सजग हैं। साथ ही आधुनिकता से उपजे विभ्रम की स्थिति से अपने आप को बचाने में सफल भी रहे हैं। आज के नव–साम्राज्यवाद का खतरा एक साथ राष्ट्रीय सम्प्रभुता, जनतंत्र और मानवीय संवेदनशीलता पर गहरे रूप में एक साथ है। इस गहन संकट को पकड़ने वाली, उसकी अभिव्यक्ति से मनुष्य को उद्वेलित कर देने वाली कविता ही आज हिन्दी कविता को नये शिखर की ओर ले जा सकती है। इसका बीसवीं या इक्कीसवीं सदी से कोई सम्बन्ध नहीं है। "आज केदारनाथ सिंह से लेकर एकदम ताजा कवि तक जो लिख रहे हैं, उससे एक बड़ी कविता की उम्मीद तो है ही। आज के कवि अपने समय के संकट और मानवीय संवेदनशीलता के प्रति सजग हैं, यही तो उम्मीद का आधार है। बाजार तन्त्र सृजन और जीवन के अवसर में तालमेल, चमत्कारीकरण (ग्लेमराइजेशन) आदि के प्रति

आकर्षण आदि इस रास्ते में बाधाएँ खड़ी करते हैं। सृजक यदि इन आकर्षणों से बच सकें तो बड़ी कविता आयेगी।"[4]

इक्कीसवीं सदी का काव्य निरर्थक युगबोध की यथार्थ स्थिति को उजागर करता है। देश की उत्तरोत्तर बिगड़ती स्थिति से कवि क्षुब्ध है। लीलाधर जगूड़ी ने युगीन विडम्बनाओं के परिप्रेक्ष्य में सही और साधारण आदमी द्वारा भोगी जाने वाली पीड़ादायक एवं असंगत परिस्थितियों पर लिखा है। उन्होंने अर्थ शून्यता, मनुष्य की अतिनिश्च नियति, आदर्श शून्यता, आदि पर तीखा प्रहार किया है– "वह जानता है/वास्तविकता और व्यवस्था में/जो फर्क है/उसके बीच/कहीं न कहीं एक क्लर्क है/ वह जाया है/फाइल दर फाइल/नंबर दर नंबर/देश ऊँचा उठ रहा है/ रेडियो रोज खबर दे रहा है/ देश आत्मनिर्भर हो रहा है/ बाकी क्या नहीं हो रहा है/खाक हो रहा हैं कूड़ा हो रहा है/देश धक्के खाता है/जब भी मिलता है/नक्शों और आँकड़ो से बाहर मिलता है।"[5]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी कहा करते थे कि महान वह होता है जो मिलने पर आगन्तुक को बिना किसी दिखावे या प्रयास के अपनी महानता का कुछ अंश दे जाता है। आज प्रभाव की अपेक्षा प्रदर्शन को महत्व दिया जा रहा है। कवि ज्ञानेन्द्रपति की अधिकांश कविताओं में दिखावे की भावना का व्यंग्यात्मक व यथार्थ चित्रण मिलता है।

सत्ता का भूख में कबीर साहब का कलेवा है
आज के बाद कौन नामलेवा है
सुना नहीं, विचारगोष्ठी में बढ़–चढ़कर जो बोल रहे थे
नामी प्रोफेसर कहीं के-गरूर में डोल रहे थे
ज्ञान थूकते थे अभिमान थूकते थे
रह–रह विदेश–यात्रा की कहानी
अहंकार की मात्रा न जाए बखानी
किसी ने बताया–बड़ा मकान बनवाया है
फर्श पर मकराने का संगमरमर लगवाया है
उनके लिए सब कबीर की माया है
हमको हमेशा धूप, उनको हर बखत छाया है।[6]

वस्तुतः "यह मण्डीवाद" के नंगे नाच का दौर है। जो भी है उसके अतिरेक, अतिश्योक्ति, अति प्रदर्शन, अतिपाठ का दौर है यह। यह मात्रा का दौर है, गुण का नहीं। यह सूचनाओं का दौर है ज्ञान का नहीं। इसमें इतना लिखा जा रहा है, इतना छप रहा है कि इस क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण मारक आवृत्ति की संस्कृति है। इसमें जिसके पास शोर नहीं है, शोर करने वाले नहीं हैं, जिसका तन्त्र नहीं है, जाल नहीं है, वह छुप जाएगा । यही नकारात्मक आवृत्ति एवं ताकत बोध काव्य संभावनाओं को भी आवृत्तिपरक (नकारात्मक अर्थों में) एवं शक्ति केन्द्रों की ओर उन्मुख है, जिसमें नई काव्य सम्भावनाओं का संहार होता है।"[7]

इक्कीसवी सदी में भाषा–संकट भी है। मीडिया ही संस्कृति का प्रचार–प्रसार करता है, और आज की तारीख में संस्कृति भी मंडी में बिकने वाली चीज बन चली है। जो दिखता है वह

बिकता है, इसीलिए मीडिया और मंडी दोनों पर अंग्रेजी हावी है।" "सभी कृतिकार अंग्रेजी–भाषी मण्डी में जगह बनाने की कोशिश करने लगे हैं। इतर भाषाओं के कई लेखक अपनी रचनाओं को साथ–साथ अंग्रेजी में अनुवाद कराने लगे हैं। मीडिया–मुग्धा युवा पीढ़ी संस्कृति के क्षेत्र में आज हर कहीं वस्तुतः अंग्रेजी के ही गीत गा रही है और अपनी भाषा के भी गा रही है तो उनमें अंग्रेजी के शब्द जरूर घुसेड़ रही है। हमारी हिंगलिश के वजन पर जापानी युवा जैपलिश बोल रहे हैं और फ्रांसीसी युवा फांग्ले। लेकिन जहाँ और देशों में इसका विरोध किया जा रहा है वहाँ भारत में गरीबों के मसीहा कहलाये जाने वाले नेता तक अपने हर वाक्य में अंग्रेजी शब्द घुसेड़कर गौरवान्वित हो रहे हैं।"[8] यह बड़ी विसंगति है कि "हिन्दी को एक सौ करोड़ से अधिक आबादी वाले देश की राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है अमल नहीं है केवल ऐलान है। मराठी को छोड़कर अन्य भारतीय भाषाओं की लिपियाँ नागरी नहीं हैं किन्तु नागरी के समीप है। हिन्दी शब्दों की वर्तनी के स्वरूप कायम नहीं हुए हैं, बहुत अंधेर तथा धाँधली हैं। इक्कीसवीं शताब्दी की हर कसौटी पर हर क्षेत्र में हिन्दी की वैज्ञानिकता, सहजता, व्यावहारिकता और सुगमता सिद्ध हो रही है, कोलाहल हो रहा है अंग्रेजी भाषा के लिए।"[9]

आज कम्प्यूटर का युग है। मनोहर श्याम जोशी का लेख है– 'कम्प्यूटर होगा अगला कवि ठाठ से उपजेंगे सब गान।' इसमें जोशी जी लिखते हैं– "साहित्यकारों को फिलहाल कम्प्यूटरों से ज्यादा खतरा नहीं है, क्योंकि भाषा के मामले में कम्प्यूटरों को संदर्भ की सामान्य समझ देना बहुत ही मुश्किल काम है। तो भी चुटकुले तैयार करने वाला कम्प्यूटर प्रोग्राम 'जेप' बन चुका है। एक विशेषज्ञ ने कम्प्यूटर से कहानी भी लिखवा डाली है। पटकथाएँ लिखने वालों की सहायता के लिए कम्प्यूटर प्रोग्राम बाजार में बिक रहे हैं और हाँ, एक कम्प्यूटर को कवि बनाना कथाकार बनाने की अपेक्षा ज्यादा आसान साबित हो रहा है, क्योंकि आधुनिक कविता में थोड़ी–बहुत अनर्गलता चल ही जाती हैं।"[10]

कविता हिन्दी पाठक का संस्कार बने ऐसा नहीं हो रहा है। हिन्दी का कवि जनता का हिस्सा नहीं बन पा रहा है। मराठी, तेलुगू में आज भी कवि जनता का हिस्सा हैं। वहाँ जब गद्दार ऊपर हमला होता है तो दसियों हजार लोग सड़क पर उतर आते हैं और नारायण सुर्वे को देखने–सुनने के लिए पूरा गाँव इकट्ठा हो जाता है। प्रसिद्ध कथाकार डॉ. राजेन्द्र यादव ने लिखा है– "साहित्य–प्रेम और उत्साह में आकर दिल्ली में होने वाली कवि–गोष्ठियों में मैं भी जाता रहा हूँ और हमेशा इस तरह बाहर निकला हूँ जैसे मुर्दा फूँककर आ रहा हूँ। यहाँ सुविधाजनक विभाजन यह कर लिया गया है कि जनता का कवि घटिया और मंचीय है और कुलीनों का कवि अपठनीय और किताबी। यानी एक तरह से हिन्दी कविता के मंच को खुले खजाने भाण्डों और विदूषकों को सौंप दिया गया है और खुद अन्तर्राष्ट्रीयताओं को समर्पित हो गए हैं।"[11]

जनमानस में पारिस्थितिक सजगता पैदा करने में समकालीन कविता अपनी भूमिका निभा रही है। आज जल, जंगल और जमीन को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और बड़े–बड़े उद्योग निगल रहे हैं। इससे पारिस्थितिक संतुलन बिगड़ रहा है। डॉ. वी.जी.. गोपालकृष्णन् के अनुसार–"समकालीन हिन्दी कविता अपने समय और समाज से सजग दिखाई देती है। पारिस्थितिक मुद्दा भी उसके प्रमुख विषयों में आ गया है। आज के कवि यह पहचान रखते हैं कि मनुष्य की प्रगति में प्रकृति का अपना योगदान है। प्रकृति से अलग हटकर प्रगति की दिशा में प्रस्थान विनाश की ओर प्रयाण है। इसलिए समकालीन कवि मनुष्य और प्रकृति के बीच के अटूट सम्बन्ध को रूपायित

कर वर्तमान पारिस्थितिक संकट के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं।"[12] लीलाधर मंडलोई, अजय पाठक, अशोक सिंह, सावित्री डागा, ज्ञानेंद्रपति देवीप्रसाद जैसे कवियों की कविता में जल, जंगल और जमीन पर क्रूर आक्रमण कर उसे तोड़ने–मरोड़ने के चित्र उभरे हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ देश की नदियों, तलाबों, झीलों को कब्जे में करके जनता को प्यासी में छोड़ रही हैं। प्राकृतिक विपदाएँ पहले भी होती रहती थीं, किन्तु आज जितनी प्रकृतिक विपदाएँ हो रही हैं उनका मूल कारण मनुष्य का प्रकृति पर करने वाला अत्याचार एवं शोषण है। ज्ञानेंद्रपति की पंक्तियों में पारिस्थितिक विनाश का एक चित्र देखा जा सकता है।

नये दिन के लिए वे तैयार कर रहे हैं खुद को
अब आयेंगे पर्वतों के पंख काटने वाले वज्रधर इन्द्र के वंशज
अपनी फटफटिया में भड़भड़िया में
और फटाफट धड़ाधड़
चालू हो जायेंगे क्रशर
बारूद की गंध फैल जायेगी हवा में
उनके टूटने की गंध के ऊपर।[13]

वर्तमान स्थिति में चारों तरफ स्वार्थ और रिश्वत का बोलबाला है। सामान्य की ओर कोई ध्यान देता नहीं। लोग धर्म के नाम पर खर्च करते हैं पर जीवित मनुष्य की ओर कोई ध्यान देता नहीं, यांत्रिक युग की घुड़–दौड़ में मानव जैसे खो गया है। ऐसे में आलोक धन्वा सदृश कवियों का आक्रोश स्वाभाविक है –

हर बार कविता लिखते–लिखते
मैं एक विस्फोटक शोक के सामने खड़ा हो जाता हूँ
कि आखिर दुनिया के इस बेहूदे नक्शे को
मुझे कब तक ढोना चाहिए,
कि टैंक के चेन में फँसे लाखों गाँवों के भीतर
एक समूचे आदमी को कितने घंटे सोना चाहिए।[14]

किन्तु यह चिंताजनक स्थिति है कि हिन्दी कविता आज की तारीख में हिन्दी समाज की शिक्षित और सहृदय बौद्धिक वर्गों की पहुँच से दूर हो गई है। नागार्जुन अक्सर कहते थे– "आज के पाठकों को यदि गुनगुनाने का हो तो उसे आज के गीतकारों को छोड़कर पीछे जाना पड़ेगा। अभिनव गुप्त ने कहा है कि कविता के लिए मन–मयूर को 'विशद' करना पड़ेगा। निरन्तर काव्यानुशीलन के अभ्यास से।[15]

डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र, अनिरुद्ध नीरव, डॉ. जीवन यदु राही, अजय पाठक जैसे गीतकार अपनी कृतियों के माध्यम से वर्तमान काव्य जगत को सरस बना रहे हैं। अजय पाठक की ग्यारह काव्य कृतियों में औद्योगीकरण के खतरे, प्रकृति प्रेम, घटते मानव मूल्य, संस्कृति प्रेम को प्रमुख रूप से उभारा गया है। जैसे–

जंगल काटा नदियाँ रोकी ऊँचे बाँध बनाये
खनिज संपदा दोहन करने पर्वत रोज ढहाये।

यही नहीं वह वन पशुओं का बन बैठा हत्यारा
दुर्बुद्धि मानव ने उसको खोज–खोज कर मारा।
करनी का फल अब उसके ही सम्मुख पड़ा हुआ है
मानव के जीवन पर ही अब संकट खड़ा हुआ है।
बिगड़ गया है 'इको–सिस्टम' गर्म हो रही धरती
हरियाली को लील रही है, बंजर ऊसर परती ।।[16]

आधुनिकता की अंधी दौड़ में सदियों से स्थापित हमारे नैतिक मूल्य और आदर्शों को हम पीछे छोड़ते जा रहे हैं, फलस्वरूप समाज में तमाम तरह की विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस भौतिकवादी परिवेश में बहुसंख्यजन मन से आहत हैं, पीड़ित और व्यथित हैं, उनकी सुनने वाला कोई नहीं। कवि अजय पाठक की कविताओं में ऐसी स्थिति का वास्तविक चित्र उभरा है। खोखले आदर्शों पर वे करारा व्यंग्य भी करते हैं–

न्याय–नीति पर भारी पड़ता झूठ और अन्याय।
दुःशासन है धर्म–आचरण का घोषित पर्याय
धर्मराज का सत्य इधर
औचित्य खो रहा है
धीरे–धीरे कुरुक्षेत्र तैयार हो रहा है।[17]

स्त्री–पुरुष मानवीय इकाई के दो शाश्वत रूप हैं। इससे इतर किसी मानव की कल्पना भी मुमकिन नहीं है। यही वजह है कि जब कभी स्त्री की चर्चा होती है, पुरुष भी किसी न किसी रूप में सामने आ जाते हैं और जब पुरुष की चर्चा होती है, वहाँ स्त्रियों की चर्चा भी लाजिमी हो जाती है। सभ्यता के उषाकाल से अद्यतन स्त्री जीवन समस्याओं और सवालों से टकराकर आगे बढ़ रहा है। स्त्रियों को जीवन की चुनौती और अस्वीकृति गर्भ से ही मिलने लगती है। कन्या भ्रूण हत्या सिर्फ एक संकीर्ण मानसिकता की समस्या ही नहीं बल्कि विज्ञान और टेक्नोलॉजी के युग में इस प्रवृत्ति का तेजी से बढ़ना और लड़का–लड़की के अनुपात का बिगड़ना इस बात का प्रमाण है कि सच्चे अर्थों में हमारा विकास नहीं हुआ है। 21वीं सदी में भी 99 प्रतिशत समाज अगर लड़का–लड़की के चक्र में उलझा है तब देश का बुलन्दी के आसमान पर पहुँचने की खबर सिर्फ शोर है। ऐसी पृष्ठभूमि पर स्त्री–विमर्श के कुछ अनछुए पहलू समकालीन कवयित्रियों में मुखर हैं। पिछले ढाई दशकों से स्त्री–विमर्श साहित्य के केन्द्र में उभरकर प्रस्तुत हो रहा है। सविता सिंह, गगन गिल, वर्तिका नंदा, अनामिका, कात्यायनी, अर्चना वर्मा, निर्मला गर्ग, उर्मिला शुक्ल तथा नीलेश रघुवंशी की कविताओं में स्त्री पीड़ा का मर्म कई स्तरों पर उभरा है। अर्चना वर्मा की कविता "दिनचर्या" मे स्त्री की पुरुष के दंभ से टकराहट इन शब्दों में अभिव्यक्त हुई है– "आज उसने तुम्हारे गलत को गलत नहीं कहा/बच्चे को बेबात पड़ा थप्पड़ /अपने गाल पर सहा/औरतों की बेअक्ली पर/तुम्हारे लतीफा सुना/और/तुम्हारे दंभ को सहलाया।"[18]

सांस्कृतिक वर्चस्ववाद ने आज तक स्त्री, दलितों व उपेक्षितों को हाशिए पर रखा है, लेकिन अब वह वर्चस्व टूट रहा है। अनेक अन्तर्विरोधों के खुलकर प्रकट होने से स्त्री–दलितों व उपेक्षितों को उसके सम्पूर्ण अधिकार देने व उनके सम्पूर्ण अस्तित्व को स्वीकारना वर्तमान की अनिवार्यता

है। समकालीन कवयित्रियाँ इस अनिवार्यता को बनाए रखने के लिए तत्पर हैं। कविता के माध्यम से स्त्री–विमर्श को मजबूत आधार देने वाली कवयित्रियों ने प्रकृति के उपादानों को भी अपने भाव जगत में विशिष्ट स्थान दिया है। साहित्य में आरंभिक तौर पर कथ्य का केन्द्र बने स्त्री–विमर्श से जुड़े मुद्दे तथा सजग व संघर्षरत स्त्री इस दिशा में मजबूती से कदम रख चुकी हैं, इसके बावजूद इस दिशा में अनेक नए क्षितिज तलाशने होंगे।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में हिन्दी दलित काव्य के कवियों में मलखान सिंह और ओमप्रकाश वाल्मीकि का विशेष महत्व है। समाज की आन्तरिक पीड़ा, उसके प्रतिरोध और उसके विद्रोह को सशक्त वाणी देने वाली मलखान सिंह की कविताओं में वर्ग वैषम्य से उपजी पीड़ा को महसूस किया जा सकता है। संस्कृति की रक्षा के नाम पर किये जाने वाली बर्बरता को ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'रुँधे हुए शब्द' कविता के ये शब्द साकार करते हैं–

मुर्दा संस्कृति की लाश पर
मंडराती चील जश्न मनाएगी
जिसके पंखों के साये में
संस्कृति का तकिया बनाकर
शिकारगार में अधलेटा आदमखोर
निकल रहा है
दाँत में फँसे माँस के रेशे
नुकीले खंजर से।[19]

मनुष्य–मनुष्य के बीच संबंधों के व्यापक संसार की कोशिश, नैतिक बल, पाठक तक पहुँचने की चिन्ता–मानवीयता को बचाए रखने का काव्य सरोकार इक्कीसवीं सदी की कविता के सम्मुख संकट है, लेकिन आशा की, समाधान की किरणें भी दिखाई दे रही हैं। अरुण कमल, हरिओम पवार, अजय पाठक, विजेन्द्र कुमार विकल, बुद्धिनाथ मिश्र, विद्याभूषण मिश्र, ऋतुराज, आलोक धन्वा और वेणुगोपाल, राजेश जोशी, उदय प्रकाश, कुमार अंबुज जैसे नव प्रगतिशील कवियों की कविताएँ बहुत ही आशाप्रद चित्र प्रस्तुत करती हैं। मनुष्य और उसके समाज से जुड़ी हुई इक्कीसवीं सदी की कविता शब्द–सौंदर्य के नए–नए लोकों में जन्म धारण करती चल रही है, यह इसकी विशेष उपलब्धि है। प्रसिद्ध रंग निर्देशक देवेन्द्रराज अंकुर का यह अभिमत उल्लेखनीय है कि "हिन्दी निश्चित रूप से यदि हर तरह के राजनैतिक, सामाजिक और साँस्कृतिक उथल–पुथल के बाद भी साहित्य और दूसरी कला–विधाओं की निरन्तर गति बनी रहती है तो कविता को भी उसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद यदि अंधा–युग जैसी काव्यकृति सामने आती है तो इसका अर्थ यह नहीं कि उसके बाद पचास वर्षों तक कुछ दिखाई नहीं देता। इसके बाद फिर एक लम्बी परम्परा महत्वपूर्ण कवियों और उनकी कविताओं की चली आती है, जिनमें मुक्तिबोध से लेकर आलोक, धन्वा तक और ये भी निश्चित है कि इक्कीसवीं शताब्दी से दूसरी शताब्दी में स्थानान्तरण ही अपने आप में एक बड़ी घटना है। अतः यह स्वाभाविक है कि इस बड़ी घटना या परिवर्तन का असर कविता पर भी पड़े।"[20]

आज स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, विकलांग–विमर्श, प्रगतिशील, परम्परावादी, उत्तर आधुनिक आदि अनेक धाराओं व वाद विशेष को केन्द्र में रखकर काव्य लिखे जा रहे हैं। इक्कीसवीं सदी की कविता भूमंण्डलीयुग की कविता है और कवियों के पास विस्तृत आकाश है। अधुनातन श्रव्य व दृश्य माध्यम के द्वारा विश्व–घटना सहज रूप में कविता का वर्ण्य विषय होने लगा है। किन्तु यह भी सत्य है कि इक्कीसवीं सदी कविता के लिए नहीं है, कहानी, उपन्यास, निबंध, संस्मरण आदि गद्य में ज़्यादा अन्तर भी नहीं रहा। अतिबौद्धिकता और अधुनातन की वजह से कविता कामिनी के लालित्य में कमी आई है। मंचीय कविता की बात ही निराली है। विदूषकों की जमात ने कविरेक प्रजापति के समादृत आसन को क्षति पहुँचाई है। इन सबके बावजूद हम कह सकते हैं कि काव्य में लोकमंगल की भावना आज की कविता में सर्वोपरि है। छंद, अलंकार आदि बाह्य आवरण व काव्य रूपों में भले ही अन्तर आया हो लेकिन मानवीय भावनाओं के चित्रण में कविता की महत्ता तब और अब भी स्वयं सिद्ध है।

संदर्भ सूची

सिंह, रामवक्ष, (1980), *महाकवि रामचरित उपाध्याय,* प्रथम संस्करण, दीपक प्रकाशन, इलाहाबाद, 56–57.

मिश्र, बलदेव प्रसाद, (1960), *रामराज्य,* 3, 21.

ओझा, सीमा, (2012), *आजकल,* फरवरी, 24.

मंडलोई, लीलाधर, (2001), *कविता के सौ बरस,* शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली, 577.

देसाई, बापूराव, (2002), *स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य विधाएं,* विकास प्रकाशन, कानपुर, 84–88.

ज्ञानेंद्रपति, (2000), *गंगातट,* राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 542.

मंडलोई, लीलाधर, (2001), *कविता के सौ बरस,* 542.

जोशी, मनोहर, श्याम, (2003), *21वीं सदी,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 307.

देसाई, बापूराव, (2002), *स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य विधाएँ,* 07.

जोशी, मनोहर, श्याम (2003), *21वीं सदी,* 271–272.

मंडलोई, लीलाधर (2001), *कविता के सौ बरस,* 583.

भारद्वाज, हेतु, (2010), *पंचशील शोध समीक्षा,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 8, 78.

भारद्वाज, हेतु, (2010), *पंचशील शोध समीक्षा,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 80.

नवल, नंदकिशोर, (2001), *शताब्दी की कविता,* प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 176.

मंडलोई, लीलाधर, (2001), *कविता के सौ बरस,* 574.

पाठक, अजय, (2007), *जंगल एक गीत है,* श्री प्रकाशन दुर्ग, 5.

पाठक, अजय, (2009), *बूढ़े हुए कबीर,* श्री प्रकाशन, दुर्ग, 72.

भारद्वाज, हेतु , (2009), *पंचशील शोध समीक्षा,* पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 6, 72.

मंडलोई, लीलाधर, (2001), *कविता के सौ बरस*, 531.

मंडलोई, लीलाधर, (2001), *कविता के सौ बरस*, 601.